अध्याय 4

बाज़ार एक सामाजिक संस्था के रूप में

12112CH04

© NCERT not to be republished

आमतौर पर हम बाज़ारों को क्रय-विक्रय के स्थान मान कर चलते हैं। दैनिक बोलचाल के प्रयोग में 'बाज़ार' शब्द का अर्थ विशेष बाज़ार हो सकता है जिन्हें हम शायद जानते हैं जैसे, रेलवे स्टेशन के पास का बाज़ार, फलों का बाज़ार या थोक बाज़ार। कभी-कभी हम स्थान की बात न कर लोगों, खरीददार और विक्रेता के जमावड़े की बात करते हैं जो मिलकर बाज़ार को बनाते हैं। अतः उदाहरण के तौर पर, एक साप्ताहिक सब्ज़ी बाज़ार नगरीय पड़ोस या पड़ोसी गाँव में हफ़्ते के हर दिन विभिन्न स्थानों पर पाया जा सकता है। एक अन्य अर्थ में, 'बाज़ार' एक क्षेत्र या व्यापार या कारोबार की श्रेणी के बारे में बात करता है जैसे, कारों का बाज़ार या फिर बने-बनाए कपड़ों का बाज़ार। इसी से जुड़ा हुआ एक अर्थ एक विशेष उत्पाद या सेवा की माँग का द्योतक है जैसे, कंप्यूटर विशेषज्ञों का बाज़ार।

इन सभी अर्थों में एक बात समान है और वो यह है कि यह सभी अर्थ एक विशेष बाज़ार की बात कर रहे हैं जिसे हम पूरी तरह तभी समझ सकते हैं जब हम उसके संदर्भ को ध्यान में रखें। पर अगर ऐसा है तो सिर्फ 'बाज़ार' का शाब्दिक प्रयोग, जो किसी विशेष जगह, लोगों के जमावड़े या बाज़ारी प्रक्रियाओं के क्षेत्र का चित्रण न करता हो, हमें क्या दर्शा सकता है? यह प्रयोग न केवल ऊपर दिए गए अर्थों को सम्मिलित करता है बल्कि तमाम तरह की आर्थिक क्रियाओं और संस्थाओं को भी इंगित करता है। अतः बृहत अर्थ में 'बाज़ार' अर्थव्यवस्था के लगभग समान है। हम बाज़ार को एक आर्थिक संस्था के रूप में देखने के आदी हैं पर यह अध्याय आपको बताएगा कि बाज़ार एक सामाजिक संस्था भी है। अपने स्वयं के तरीके में बाज़ार की तुलना जाति, जनजाति या परिवार जैसी स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष सामाजिक संस्थाओं, जिनका वर्णन अध्याय 3 में किया गया है, से की जा सकती है।

4.1 बाज़ार और अर्थव्यवस्था का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

अर्थशास्त्र की पाठन प्रक्रिया का उद्देश्य इस बात को समझने और व्याख्या करने से है कि आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में बाज़ार किस प्रकार से कार्य करता है जैसे, मूल्य किस तरह से तय होते हैं, किसी विशेष प्रकार के निवेश का संभावित असर या वह कौन से कारक हैं जो लोगों को खर्च करने या पैसे बचाने के लिए प्रभावित करते हैं तो समाजशास्त्र बाज़ारों के पठन-पाठन में क्या योगदान कर सकता है जो अर्थशास्त्र से अछूता रह गया है?

इसके जवाब के लिए हमें संक्षिप्त तौर पर अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैंड और आधुनिक अर्थशास्त्र के शुरुआती दिनों के बारे में जानना होगा जिसे उस दौर में 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' कहा जाता था। आरंभिक दौर के राजनीतिक अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ सबसे चर्चित थे जिन्होंने अपनी किताब द *वेल्थ ऑफ़ नेशन्स* में बाज़ार की अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास किया जो उस वक्त अपने शुरुआती दौर में थी। स्मिथ का तर्क था कि बाज़ारी अर्थव्यवस्था व्यक्तियों में आदान-प्रदान या सौदों का एक लंबा क्रम है, जो अपनी क्रमबद्धता की वजह से खुद-ब-खुद एक कार्यशील और स्थिर व्यवस्था की स्थापना करती है। यह तब भी होता है जब करोड़ों के लेन-देन में शामिल व्यक्तियों में से कोई भी व्यक्ति इसकी स्थापना का इरादा नहीं रखता।

आधुनिक अर्थशास्त्र का विकास एड्म स्मिथ जैसे प्रारंभिक विचारकों के विचारों से हुआ और यह इस विचार पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था को समाज के एक पृथक् हिस्से के रूप में भी पढ़ा जा सकता है

Reprint 2026-27

जो बड़े सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ से अलग है, जिसमें बाज़ार अपने स्वयं के नियमों के अनुसार कार्य करता है। इस उपागम के विपरीत, समाजशास्त्रियों ने बड़े सामाजिक ढाँचे के अंदर आर्थिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं को समझने के लिए एक वैकल्पिक तरीके का विकास करने का प्रयास किया है।

समाजशास्त्री मानते हैं कि बाज़ार सामाजिक संस्थाएँ हैं जो विशेष सांस्कृतिक तरीकों द्वारा निर्मित है। उदाहरण के लिए, बाज़ारों का नियंत्रण या संगठन अक्सर विशेष सामाजिक समूह या वर्गों द्वारा होता है और इसकी अन्य संस्थाओं, सामाजिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं से भी विशेष संबद्धता होती है। समाजशास्त्री इस विचार को अक्सर यह कहकर प्रकट करते हैं कि अर्थव्यवस्थाएँ समाज में 'रची-बसी' हैं। इस मत को यहाँ दो उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया गया है, एक उदाहरण है, एक साप्ताहिक आदिवासी हाट का और दूसरा है एक 'पारंपरिक व्यापारिक समुदाय' और भारत के उपनिवेशिक दौर में उसका लेन-देन का नेटवर्क या तंत्र।

एडम स्मिथ (1723-90)

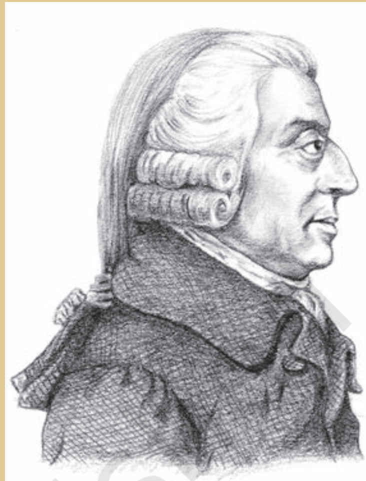

एडम स्मिथ समकालीन आर्थिक विचारों के उद्गमकर्ता के रूप में जाने जाते हैं। स्मिथ अपनी पाँच पुस्तकों की शृंखला 'दे *वेल्थ ऑफ़ नेशन्स*' से प्रसिद्ध हैं, जिसमें इस बात की व्याख्या की गई है कि कैसे खुली-बाज़ार अर्थव्यवस्था में तार्किक स्वयं-लाभ आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा देता है।

छत्तीसगढ़ के जिला बस्तर में धोराई गाँव का एक साप्ताहिक 'आदिवासी बाज़ार'

दुनिया भर के अधिकांश कृषक या 'खेतिहर' समाजों में आवधिक बाज़ार या हाट, सामाजिक और आर्थिक संगठन व्यवस्था की एक केंद्रीय विशेषता होती है। साप्ताहिक बाज़ार आस-पास के गाँवों के लोगों को एकत्रित करता है जो अपनी खेती की उपज या किसी और उत्पाद को बेचने आते हैं और वे बनी-बनाई वस्तुएँ एवं अन्य सामान खरीदने आते हैं जो उनके गाँवों में नहीं मिलते। इन बाज़ारों में स्थानीय क्षेत्र से बाहर के लोगों के साथ-साथ साहुकार, मसखरे, ज्योतिषी एवं तमाम तरह के विशेषज्ञ अपनी सेवाएँ एवं वस्तुओं के साथ आते हैं। ग्रामीण भारत में एक कम तय अंतराल पर विशेष बाज़ार भी लगते हैं, जिसका एक आवधिक उदाहरण है पशुबाज़ार। यह आवधिक बाज़ार विभिन्न स्थानीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को जोड़ता है एवं उन्हें बृहद राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं और कस्बों एवं महानगरीय केंद्रों से जोड़ता है।

साप्ताहिक हाट, ग्रामीण एवं नगरीय भारत में भी एक आम नज़ारा होता है। पहाड़ी और जंगलाती इलाकों में (खास तौर पर, जहाँ आदिवासी बसे होते हैं) जहाँ अधिवास दूर-दराज़ तक होता है, सड़कें और संचार भी जीर्ण-शीर्ण होता है एवं अर्थव्यवस्था भी अपेक्षाकृत अविकसित होती है ऐसे में साप्ताहिक बाज़ार उत्पादों के आदान-प्रदान के साथ-साथ सामाजिक मेल-मिलाप की एक प्रमुख संस्था बन जाता है। स्थानीय लोग बाज़ार में अपनी खेती की उपज या जंगल से लाए गए पदार्थों को व्यापारियों को बेचते हैं जो कस्बों में इन्हें ले जाकर दुबारा बेचते हैं और इन पैसों से आवश्यक वस्तुएँ जैसे नमक एवं खेती के औज़ार और उपभोग की वस्तुएँ जैसे, चूड़ियाँ और गहने खरीदते हैं। पर अधिकांश लोगों के लिए हाट जाने का प्रमुख कारण सामाजिक है जहाँ वह अपने रिश्तेदारों से भेंट कर सकता है, घर के जवान लड़के-लड़कियों का विवाह तय कर सकता है, गप्पे मार सकता है और कई अन्य कार्य कर सकता है।

© NCERT not to be republished

जहाँ जनजातीय क्षेत्रों में साप्ताहिक बाज़ार एक बहुत पुरानी संस्था है वहीं समय के साथ इनके स्वरूप में परिवर्तन भी हुआ है। इन दूरस्थ क्षेत्रों के उपनिवेशिक राज्यों के नियंत्रण में आने के बाद इन्हें धीरे-धीरे क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ दिया गया। जनजातीय क्षेत्रों को सड़कों के निर्माण द्वारा और स्थानीय लोगों को 'समझा-बुझा' के (जिनमें से बहुत से लोगों ने 'जनजातीय विद्रोहों' द्वारा औपनिवेशिक शासन का विरोध किया था) 'खोला गया' ताकि इन इलाकों के समृद्ध जंगलों और खनिजों तक बेरोक-टोक पहुँचा जा सके। ऐसा होने से इन क्षेत्रों में व्यापारी, साहुकार और आस-पास के मैदानी इलाकों से अन्य गैर जनजातीय लोगों का यहाँ भी ताँता लग गया। इस प्रकार जनजातीय अर्थव्यवस्था में बदलाव आ गया क्योंकि अब जंगल के उत्पादों को बाहरी लोगों को बेचा जाने लगा और नयी तरह की वस्तुएँ व्यवस्था में शामिल हो गईं। आदिवासियों को अब उन खदानों और बागानों में भी मज़दूर के तौर पर रखा जाने लगा जो अंग्रेज़ी सरकार के दौर में स्थापित हुए थे। औपनिवेशिक दौर के दौरान जनजातीय श्रम के एक 'बाज़ार' का विकास हुआ। इन तमाम बदलावों की वजह से स्थानीय जनजातीय अर्थव्यवस्थाएँ बड़े बाज़ारों से जुड़ गईं पर इसका असर स्थानीय लोगों के लिए सामान्यतः बेहद नकारात्मक था। उदाहरण के लिए, बाहर से स्थानीय क्षेत्रों में साहूकारों और व्यापारियों के आवागमन ने आदिवासियों को दरिद्र कर दिया, उनमें से अधिकांश ने अपनी जमीन बाहरी लोगों के हाथ खो दी।

साप्ताहिक बाज़ार एक सामाजिक संस्था के रूप में, जनजातीय स्थानीय अर्थव्यवस्था और बाहरी वातावरण के बीच की कड़ियों और आदिवासियों एवं अन्य लोगों के बीच के आर्थिक शोषण का संबंध, इन सबका चित्रण बस्तर जिले के एक साप्ताहिक बाज़ार के अध्ययन में किया गया है। इस ज़िले में गोंड आदिवासी रहते हैं। साप्ताहिक बाज़ार में आप स्थानीय लोग, जिसमें जनजातीय और गैर-जनजातीय (मुख्यतः हिंदू) के साथ-साथ बाहरी लोग जिसमें मुख्यतः विभिन्न जातियों के हिंदू व्यापारी होते हैं को पाएँगे। वन अधिकारी भी बाज़ार में इन आदिवासियों के साथ व्यापार करने आते हैं जो वन-विभाग के लिए काम करते हैं। इस प्रकार, इस बाज़ार में तमाम तरह के विशेष विक्रेता अपने उत्पाद और सेवाएँ बेचने आते हैं। मुख्य चीज़ें जिनका बाज़ार में विनिमय होता है वे बनी-बनाई वस्तुएँ (जैसे, गहने और पायलें, बर्तन और चाकू), गैर-स्थानीय खाद्य पदार्थ (जैसे, नमक और हल्दी), स्थानीय खाद्य सामग्री, खेतिहर उत्पाद और बनी बनाई वस्तुएँ (जैसे, बाँस की टोकरी), और जंगल के उत्पाद (जैसे, इमली एवं तिलहन) हैं। जंगल के उत्पाद जो आदिवासी लेकर आते हैं, वह व्यापारी खरीदकर कस्बों में ले जाते हैं। इन हाटों में खरीददार मुख्यतः आदिवासी ही होते हैं, पर विक्रेता मुख्यतः जाति-प्रधान हिंदू होते हैं। आदिवासी, जंगली और खेती संबंधी उत्पादों और अपने श्रम-बल को बेचकर जो पैसा कमाते हैं वो मुख्यतः इन हाटों में मिलने वाली सस्ती पायलों एवं गहनों और उपभोग की वस्तुएँ जैसे, बने-बनाए कपड़ों की खरीददारी के लिए खर्च करते हैं।

बस्तर में एक आदिवासी गाँव का बाज़ार

बॉक्स 4.1

धोराई एक आदिवासी बाज़ार वाले गाँव का नाम है जो कि छत्तीसगढ़ के उत्तरी बस्तर जिले के भीतरी इलाके में बसा है... जब बाज़ार नहीं लगता, उन दिनों धोराई एक उँघता हुआ, पेड़ों के छप्परों से छना हुआ, घरों का झुरमुट है जो पैर पसारे उन सड़कों से जा मिलता है जो बिना किसी नाप-माप के जंगल भर में फैली हुई है... धोराई का सामाजिक जीवन, यहाँ की दो प्राचीन चाय की दुकानों तक सीमित है, जिसके ग्राहक राज्य वन सेवा के निम्न श्रेणी के कर्मचारी हैं जो दुर्भाग्यवश इस दूरवर्ती और निरर्थक इलाके में कर्मवश फँसे पड़े हैं... धोराई का अस्तित्व गैर-बाज़ारी दिनों में या शुक्रवार को छोड़कर शून्य के बराबर होता है, पर बाज़ार वाले दिन वो किसी और जगह में तब्दील हो जाता है। ट्रकों से रास्ता जाम हुआ होता है... वन के सरकारी कर्मचारी अपनी इस्तरी की हुई पोशाकों में इधर से उधर चहलकदमी कर रहे होते हैं और वन सेवा के महत्त्वपूर्ण अधिकारी अपनी ड्यूटी बजाकर वन विभाग के विश्राम गृहों के आँगनों से बाज़ार पर बराबर नज़र बनाए रखते हैं। वे आदिवासी श्रमिकों को उनके काम का भत्ता बाँटते हैं...

जब अफ़सरात आराम घर में सभा लगाते हैं तो आदिवासियों की कतार चारों ओर से खिंचती चली जाती है, वो जंगल के समान, अपने खेतों की उपज या फिर अपने हाथ से बनाया हुआ कुछ लेकर आते हैं। इनमें तरकारी बेचने वाले हिंदू एवं विशेषज्ञ शिल्पकार, कुम्हार, जुलाहे एवं लोहार सम्मिलित होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि समृद्धि के साथ अस्त-व्यस्तता है, बाज़ार के साथ-साथ कोई धार्मिक उत्सव भी चल रहा है... लगता है जैसे सारा संसार, इंसान, भगवान सब एक ही जगह बाज़ार में एकत्रित हो गए हैं। बाज़ार लगभग एक चतुर्भुजीय जमीनी हिस्सा है, लगभग 100 एकड़ के वर्गमूल में बसा हुआ है जिसके बीचोंबीच एक भव्य बरगद का पेड़ है। बाज़ार की छोटी-छोटी दुकानों की छत छप्पर की बनी है और यह दुकानें काफ़ी पास-पास हैं, बीच-बीच में गलियारे से बन गए हैं, जिनमें से खरीदार सँभलते हुए किसी तरह कम स्थापित दुकानदारों के कमदामी सामानों को पैर से कुचलने से बचाने की कोशिश करते हैं, जिन्होंने स्थाई दुकानों के बीच की जगह का अपनी वस्तुएँ प्रदर्शित करने के लिए हर संभव उपयोग किया है।

स्रोत: गेल 1982:470–71

पूर्व उपनिवेशिक और उपनिवेशिक भारत में जाति आधारित बाज़ार एवं व्यापारिक तंत्र

भारतीय आर्थिक इतिहास के कुछ पारंपरिक विवरण भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज को एक अपरिवर्तनशील रूप में देखते हैं। यह माना जाता रहा है कि आर्थिक रूपांतरण उपनिवेशिवाद के साथ ही शुरू हुआ। ऐसा माना जाता था कि भारत प्राचीन ग्रामीण समुदायों का देश है जो अपेक्षाकृत स्व-निर्भर थे और उनकी अर्थव्यवस्थाएँ प्राथमिक तौर पर गैर-बाज़ारी विनिमय के आधार पर संगठित थीं। उपनिवेशिकता के दौरान और भारत की आज़ादी के प्रारंभिक दौर में ऐसा माना गया कि व्यावसायिक रुपये-पैसे की अर्थव्यवस्था के स्थानीय कृषक अर्थव्यवस्था में आने और विनिमय के बृहत क्षेत्रों में उनके शामिल होने से ग्रामीण एवं नगरीय समाजों में जबरदस्त सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हुए। यहाँ ये कहना सही है कि उपनिवेशिकता ने बड़े आर्थिक रूपांतरण किए जैसे, अंग्रेज़ी सरकार की ये माँग कि भूमि के लगान को नकद चुकता करना है, वहीं हाल ही में हुए ऐतिहासिक शोध यह दिखाते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था का मौद्रीकरण (व्यापार में रुपए-पैसे का प्रयोग होना) उपनिवेशिकता के ठीक पहले से ही विद्यमान था। जहाँ बहुत से गाँवों और इलाकों में विभिन्न प्रकार की गैर-बाज़ारी विनिमय व्यवस्था (जैसे, 'जजमानी

Reprint 2026-27

व्यवस्था') तो मौजूद थी पर उपनिवेशिकता से पहले भी गाँव विनिमय के बड़े तंत्र का हिस्सा थे जिससे कृषि उत्पाद और तरह-तरह की अन्य वस्तुओं का व्यापारिक प्रचलन होता था (बेयली 1983, स्टाइन एवं सुब्रमण्यम 1996)। अब ऐसा लगता है कि 'पारंपरिक' और 'आधुनिक' (या पूँजीवाद से पहले और पूँजीवाद का दौर) अर्थव्यवस्था के बीच अक्सर जो विभाजन किया जाता है वो इस सफ़ाई से बँटा हुआ नहीं है, बल्कि एक-दूसरे से घुला मिला है। हाल ही के ऐतिहासिक शोधों ने ये भी उजागर किया है कि उपनिवेश के पहले भी भारत में विस्तृत और परिष्कृत व्यापारिक तंत्र विद्यमान थे। यह तो हम सब जानते हैं कि पिछली कितनी ही शताब्दियों से भारत हथकरघा के कपड़ों का मुख्य निर्माता और (सूती कपड़े और महँगे रेशम दोनों) निर्यातक होने के साथ-साथ अनेक अन्य वस्तुओं (जैसे, मसालों) जिनकी वैश्विक बाज़ार में, मुख्यतः यूरोप में भारी माँग थी, का स्रोत था। तो यह कतई आश्चर्य की बात नहीं है कि उपनिवेश के पहले के दिनों में भारत में उन्नत अवस्था के उत्पादन केंद्रों के साथ-साथ देशज व्यापारियों का संगठित समाज, व्यापारिक तंत्र और बैंकिंग व्यवस्था भी शामिल थी जिससे भारत, आंतरिक स्तर पर और बाकी दुनिया से भी व्यापार करने में सक्षम था। इन पारंपरिक व्यापारिक समुदायों या जातियों की अपनी कर्ज़ और बैंक की व्यवस्थाएँ थीं। उदाहरण के लिए, विनिमय और कर्ज़ का एक महत्त्वपूर्ण साधन-हुंडी या विनिमय का बिल (जो कि एक कर्ज़ पत्र की तरह था) थी इसे व्यापारी लंबी दूरी के व्यापार में इस्तेमाल करते थे। चूँकि व्यापार प्राथमिकता में इन समुदायों की जाति एवं नातेदारी क्षेत्रों में ही होता था इसलिए देश में किसी एक कोने से एक व्यापारी द्वारा जारी हुई हुंडी दूसरे कोने में व्यापारी द्वारा स्वीकार की जाती थी।

बॉक्स 4.2

तमिलनाडु के नाकरट्टारों में जाति आधारित व्यापार

नाकरट्टारों में एक-दूसरे से कर्ज लेना या पैसा जमा करना जाति आधारित सामाजिक संबंधों से जुड़ा होता था जो कि व्यापार के भूभाग, आवासीय स्थान, वंशानुक्रम, विवाह और सामान्य संप्रदाय की सदस्यता पर आधारित था। आधुनिक पश्चिमी बैंकिंग व्यवस्था के विपरीत, नाकरट्टारों में नेकनामी (प्रतिष्ठा), निर्णय, क्षमता और जमा पूँजी जैसे सिद्धांतों के अनुसार विनिमय होता था, न कि सरकार नियंत्रित केंद्रीय बैंक के नियमों के अंतर्गत, और यही प्रतीक संपूर्ण जाति के प्रतिनिधि की तरह प्रत्येक एकल नाकरट्टर व्यक्ति के इस व्यवस्था में विश्वास को सुनिश्चित करते थे। दूसरे शब्दों में, नाकरट्टारों की बैंकिंग व्यवस्था एक जाति आधारित बैंकिंग व्यवस्था थी। हर एक नाकरट्टार ने अपना जीवन विभिन्न प्रकार की सामूहिक संस्थाओं में शामिल होने और उसका प्रबंध करने के अनुसार संगठित किया था। यह वह संस्थाएँ थीं जो उनके समुदाय में पूँजी जमा करने और बाँटने में जुटी हुई थी।

स्रोतः रुडनर 1994:234

बाज़ारों का सामाजिक संगठन : 'पारंपरिक व्यापारिक समुदाय'

भारतीय अर्थव्यवस्था के अनेक समाजशास्त्रीय अध्ययन 'पारंपरिक व्यापारिक समुदायों' या जातियों जैसे नाकरट्टारों पर केंद्रित हैं। जैसाकि आप अच्छी तरह से जान गए हैं कि भूमि पर अधिकार, व्यावसायिक भिन्नताएँ और अन्य विषयों के संदर्भ में जाति व्यवस्था और अर्थव्यवस्था में गहरा नाता है। यह बात बाज़ारों और व्यापार पर भी उतनी ही लागू होती है। वास्तव में, 'वैश्य' चार वर्णों में से एक हैं,

Reprint 2026-27

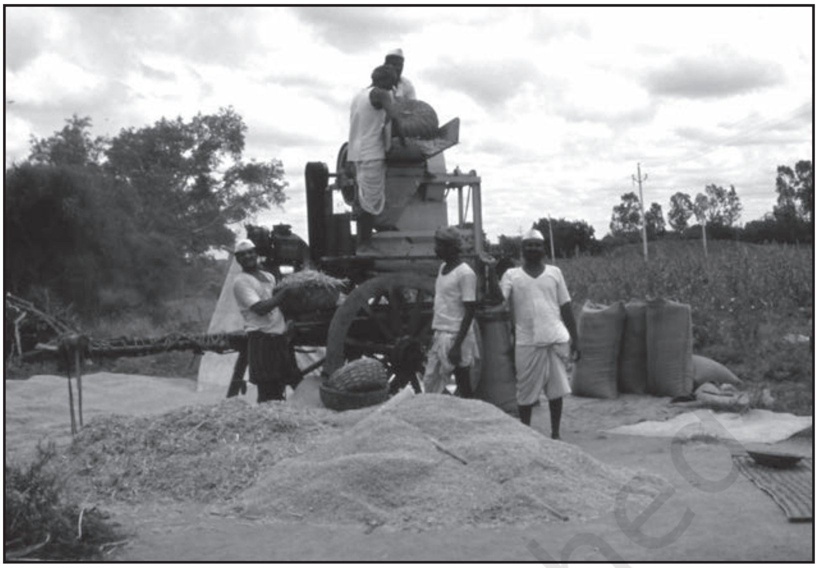

यह तथ्य भारतीय समाज में प्राचीनकाल से व्यापार और व्यापारी के महत्त्व को दर्शाता है। हालाँकि अन्य वर्णों की तरह 'वैश्य' प्रस्थिति अक्सर स्थिर पहचान या सामाजिक स्थिति की तुलना में अधिकार या आकांक्षा से प्राप्त की हुई होती है। हालाँकि, कुछ ऐसे 'वैश्य' समुदाय भी हैं (जैसे, उत्तरी भारत के बनिया) जिनका पारंपरिक व्यवसाय एक लंबे समय से व्यापार या वाणिज्य रहा है। कुछ जाति समूह भी हैं जो व्यापार में शामिल हो गए हैं। ऐसे समूह ऊपर बढ़ने की प्रक्रिया में 'वैश्य' की प्रस्थिति पाने की आकांक्षा रखते हैं या इस पर अधिकार जताते हैं। सभी जाति समुदायों के इतिहास की तरह, अधिकांश दशाओं में जाति प्रस्थिति या पहचान और जाति व्यवहारों जिसमें व्यवसाय भी शामिल हैं के बीच एक जटिल संबंध होता है। भारत में 'पारंपरिक व्यापारिक समुदायों' में सिर्फ़ 'वैश्य' ही नहीं बल्कि और समूह भी अपनी भिन्न धार्मिक या अन्य सामुदायिक पहचानों के साथ शामिल हैं जैसे; पारसी, सिंधी, बोहरा या जैन। व्यापारिक समुदायों की समाज में हमेशा उच्च प्रस्थिति नहीं रही है। मसलन, उपनिवेश काल में नमक का दूर-दराज़ तक व्यापार एक उपेक्षित जनजातीय समूह, बंजारों द्वारा होता था। हर स्थिति में सामुदायिक संस्थाओं का विशेष स्वरूप और उनका आचरण विभिन्न संस्थाओं और व्यापारिक प्रथाओं को जन्म देता है।

भारत में अतीत व समकालीन परिवेश में बाज़ारों के परिचालन को समझने के लिए हम इस बात की जाँच कर सकते हैं कि किस तरह व्यापार के कुछ विशेष-क्षेत्र विशेष समुदायों द्वारा नियंत्रित होते हैं। इस जाति आधारित विशेषता का एक कारण यह भी हो सकता है कि व्यापार और खरीद-फ़रोख़्त आमतौर पर जाति एवं नातेदारी तंत्रों में ही होता है जैसाकि हमने नाकरट्टारों के मामले में देखा। क्योंकि व्यापारी अपने स्वयं के समुदायों के लोगों पर विश्वास औरों की अपेक्षा ज़्यादा करते हैं इसलिए वे बाहर के लोगों की बजाय इन्हीं संपर्कों में व्यापार करते हैं और इससे व्यापार के कुछ क्षेत्रों पर एक जाति का एकाधिकार हो जाता है।

उपनिवेशवाद और नए बाज़ारों का आविर्भाव

उपनिवेशवाद के आते ही भारतीय अर्थव्यवस्था में गहरे बदलाव आए जिससे उत्पादन, व्यापार और कृषि में एक अभूतपूर्व विघटन हुआ। एक जाना माना उदाहरण है, हथकरघा के काम का खात्मा हो जाना। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उस वक्त के बाज़ारों में इंग्लैंड से सस्ते बने-बनाए कपड़ों की भरमार लगा दी गई थी। हालाँकि भारत में उपनिवेश के दौर से पहले ही एक जटिल मौद्रीकृत अर्थव्यवस्था विद्यमान थी, ज्यादातर इतिहासकार उपनिवेश काल को एक संधिकाल के रूप में देखते हैं। उपनिवेश काल के दौरान, भारत विश्व की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से और अधिक जुड़ गया। अंग्रेज़ी राज से पहले भारत बने-बनाए

क्रियाकलाप 4.1

जिस कस्बे या शहर में आप रहते हैं उसके बाज़ार या खरीददारी करने वाले क्षेत्रों में जाएँ। यह पता करने की कोशिश करें कि महत्त्वपूर्ण व्यापारी कौन हैं। क्या कोई विशेष व्यापार के क्षेत्र हैं जो विशेष समुदायों द्वारा नियंत्रित हैं जैसे, आभूषण, किराना, लोहे, लकड़ी एवं अन्य वस्तुओं की दुकानें? इन दुकानों में से कुछ में जाएँ एवं उनके मालिकों और उनके समुदायों के बारे में पता करें। क्या यह उनका पुश्तैनी पारिवारिक व्यापार है?

सामानों के निर्यात का एक मुख्य केंद्र था। उपनिवेशवाद के बाद भारत कच्चे माल और कृषक उत्पादों का स्रोत और उत्पादित सामानों का उपभोक्ता बना दिया गया, यह दोनों कार्य इंग्लैंड के उद्योगों को लाभ पहुँचाने के लिए किए गए। लगभग उसी समय नए समूह (मुख्यतः यूरोपियन) व्यापार और व्यवसाय में आने लगे, वो या तो पहले से जमे हुए व्यापारिक समुदायों से मेल-जोल कर अपना व्यापार शुरू करते थे या कभी उन समुदायों को उनका व्यापार छोड़ने को मजबूर करके। परंतु पहले से विद्यमान आर्थिक संस्थाओं को पूरी तरह से नष्ट करने के बजाय भारत में बाज़ार अर्थव्यवस्था के विस्तार में कुछ व्यापारिक समुदायों को नए अवसर प्रदान किए, जिन्होंने बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को पुनर्गठित किया और अपनी स्थिति को सुधारा। कुछ मामलों में, उपनिवेशवाद द्वारा प्रदान किए गए आर्थिक सुअवसरों का लाभ उठाने के लिए नए समुदायों का जन्म हुआ जिन्होंने स्वतंत्रता के बाद भी अपनी आर्थिक शक्ति को निरंतरता से बनाए रखा।

इस प्रक्रिया का एक अच्छा उदाहरण है; मारवाड़ी, जो शायद भारत में हर जगह पाए जाने वाले एवं सबसे ज्यादा जाना-माना व्यापारिक समुदाय है। मारवाड़ियों का प्रतिनिधित्व बिड़ला परिवार जैसे नामी औद्योगिक घरानों से तो है ही, छोटे-छोटे दुकानदारों और व्यापारियों से भी हैं, जो भारत के हर कस्बे के बाज़ारों में बसे हुए हैं। उपनिवेश काल के दौरान ही मारवाड़ी एक सफल व्यापारिक समुदाय बने, जब उन्होंने उपनिवेशिक शहरों जैसे कलकत्ता में मिलने वाले नए सुअवसरों का लाभ उठाया और व्यापार और साहूकारी जारी रखने के लिए देश के सभी भागों में बस गए। नाकरट्टारों की तरह मारवाड़ियों की सफलता भी उनके गहन सामाजिक तंत्रों की वजह से है जिसने उनकी बैंकिंग व्यवस्था के संचालन के लिए आवश्यक विश्वास से भरपूर संबंधों की स्थापना की। अनेक मारवाड़ी परिवार इतनी पूँजी जुटा पाए कि वो लोगों को ब्याज पर कर्ज़ देने लगे, इन बैंकों जैसी आर्थिक प्रवृत्ति की मदद से भारत में अंग्रेज़ों के वाणिज्यिक विस्तार को भी मदद मिली (हार्डग्रोव, 2004)। उपनिवेश के आखिरी दिनों में और स्वतंत्रता के बाद कुछ मारवाड़ी परिवारों ने अपने आपको आधुनिक उद्योगों में रूपांतरित कर लिया और आज भी भारत में किसी अन्य समुदाय की तुलना में मारवाड़ियों की उद्योग में सबसे बड़ी हिस्सेदारी है। उपनिवेश के दौरान एक नए व्यापारिक समुदाय का उभरकर आना और इसका छोटे प्रवासी व्यापारी से बड़े साहूकार और उद्योगपतियों में बदल जाने की यह कहानी आर्थिक प्रक्रियाओं में सामाजिक संदर्भ के महत्त्व को दर्शाती है।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

4.2 पूँजीवाद को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में समझना

आधुनिक समाजशास्त्र के संस्थापकों में से एक कार्ल मार्क्स आधुनिक पूँजीवाद के आलोचक भी थे। मार्क्स ने पूँजीवाद को पण्य (commodity) उत्पादन या बाज़ार के लिए उत्पादन करने की व्यवस्था के रूप में समझा, जो कि श्रमिक की मजदूरी पर आधारित है। जैसाकि आप पहले ही पढ़ चुके हैं मार्क्स ने लिखा है कि सभी आर्थिक व्यवस्थाएँ सामाजिक व्यवस्थाएँ भी हैं। हर **उत्पादन विधि** विशेष उत्पादन संबंधों से बनती है और अंततः वह एक विशिष्ट वर्ग संरचना का निर्माण करती है। मार्क्स ने इस बात पर जोर दिया कि अर्थव्यवस्था चीजों से नहीं बल्कि लोगों के बीच रिश्तों से बनती है जो उत्पादन की प्रक्रिया के द्वारा एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। पूँजीवादी उत्पादन विधि के अंतर्गत, मजदूरी या श्रम भी एक बिकाऊ सामान बन जाता है क्योंकि मजदूरों को अपनी **श्रम शक्ति** को बाज़ार में बेचकर ही अपनी मज़दूरी कमानी है। इस तरह दो आधारभूत वर्गों का गठन होता है; पूँजीपति जो उत्पादन के साधनों (जैसे कारखानों) के मालिक हैं और श्रमिक, जो अपना श्रम पूँजीपतियों को बेचते हैं। पूँजीपति वर्ग को इस व्यवस्था से मुनाफ़ा होता है क्योंकि वो श्रमिकों को उनके काम के बराबर दाम नहीं देते ऐसा करते हुए वो उनके श्रम से अतिरिक्त मूल्य निकाल लेते हैं। मार्क्स के पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और समाज के सिद्धांत ने उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में पूँजीवाद के स्वरूप के बारे में अनेक सिद्धांतों और बहसों को प्रेरित किया।

वस्तुकरण या पण्यीकरण और उपभोग

दुनिया के हर एक कोने में पूँजीवाद के विकास से जीवन के हर क्षेत्र और हिस्सों में बाज़ारों का विस्तार हो गया जो कि पहले इस व्यवस्था से अछूते थे। **पण्यीकरण** (commoditisation) तब होता है जब कोई वस्तु बाज़ार में बेची-खरीदी न जा सकती हो और अब वह बेची-खरीदी जा सकती है अर्थात् अब वह बाज़ार में बिकने वाली एक चीज़ बन गई है। जैसे, श्रम और कौशल अब ऐसी चीजें हैं जो खरीदी व बेची जा सकती हैं। मार्क्स और पूँजीवाद के अन्य आलोचकों के अनुसार, पण्यीकरण की प्रक्रिया के नकारात्मक सामाजिक प्रभाव हैं। श्रम का पण्यीकरण एक उदाहरण है लेकिन समकालीन समाज में ऐसे और भी उदाहरण हैं। मसलन, आजकल एक विवादास्पद वाक्या है गरीब लोगों द्वारा अपनी किडनी को अमीर लोगों को बेचना जिन्हें किडनी के प्रतिस्थापन की आवश्यकता है। बहुत से लोगों का मानना है कि मानव अंगों का पण्यीकरण नहीं होना चाहिए। पहले के समय में इंसानों को गुलाम के तौर पर बेचा और खरीदा जाता था, पर आज के दौर में लोगों को वस्तुओं की तरह समझना अनैतिक माना जाता है। पर आधुनिक समाज में लगभग हर कोई मानता है कि इंसान का श्रम खरीदा जा सकता है या पैसों के बदले में अन्य सेवाओं या कौशल उपलब्ध कराया जा सकता है। मार्क्स के अनुसार, यह वह स्थिति है जो सिर्फ़ पूँजीवादी समाजों में ही पाई जाती है।

समकालीन भारत में हम देख सकते हैं कि कुछ चीज़ें या प्रक्रियाएँ जो पहले बाज़ार का हिस्सा नहीं थीं अब वह बाज़ार में मिलने वाली वस्तुएँ हो गई हैं। जैसे, पारंपरिक रूप से पहले विवाह परिवार के लोगों द्वारा तय किए जाते थे पर अब व्यावसायिक विवाह ब्यूरो की भरमार है जो वेबसाइट्स या किसी और माध्यम से लोगों का विवाह तय कराते हैं और इसका मेहनताना लेते हैं। दूसरा उदाहरण है, अनेक

Reprint 2026-27

निजी संस्थान जो 'व्यक्तित्व सँवारने', अंग्रेज़ी बोलना-सिखाने और अन्य चीजों के लिए पाठ्यक्रमों को चलाते हैं जो कि विद्यार्थियों को (अधिकांश मध्यमवर्गीय नौजवानों) समकालीन विश्व में सफल होने के लिए आवश्यक सांस्कृतिक और सामाजिक कौशल को सिखाते हैं। पुराने समय में, सामाजिक कौशल और शिष्टाचार जैसे, अच्छा आचरण प्रमुख रूप से परिवार में ही सिखाया जाता था। हम इस बारे में ऐसे भी सोच सकते हैं कि आजकल जो निजी संस्थाओं में होड़ लगी है— नए विद्यालय, महाविद्यालय और कोचिंग क्लासेस को चलाने के लिए वो भी इस बात को दर्शाती है कि किस तरह से शिक्षा का पण्यीकरण हो रहा है।

क्रियाकलाप 4.2

पण्यीकरण बड़ा शब्द है, जो सुनने में जटिल लगता है। पर जिन प्रक्रियाओं की तरफ़ वो इशारा करता है उनसे हम परिचित हैं और वे हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा है। एक साधारण उदाहरण हैः बोतल का पानी।

शहर या कस्बे में, यहाँ तक की अधिकांश गाँवों में भी बोतल का पानी खरीदना अब संभव है; 2, 1 लीटर या उससे छोटे पैमाने में वो हर एक जगह बेची जाती है। अनेक कंपनियाँ हैं और अनेक ब्रांड के नाम हैं जिससे पानी की बोतलें पहचानी जाती हैं। पर यह एक नयी प्रघटना है जो दस-पन्द्रह साल से ज़्यादा पुरानी नहीं है। मुमकिन है कि आप खुद उस समय को याद कर सकते हैं जब पानी की बोतलें नहीं बिका करती थीं। बड़ों से पूछो। माता-पिता के पीढ़ी के लोगों को अजीब लगा होगा और आप के दादा-दादी के जमाने में तो इसके बारे में बिरले लोगों ने सुना या सोचा होगा। ऐसा सोचना भी कि पेयजल के लिए कोई पैसा माँग सकता है, उनके लिए अविश्वसनीय होगा। पर, आज यह हमारे लिए आम बात है, एक साधारण-सी बात, एक वस्तु जिसे हम खरीद (या बेच) सकते हैं। इसी को पण्यीकरण (commoditisation/commodification) कहते हैं, एक प्रक्रिया जिसके द्वारा कोई भी चीज़ जो बाज़ार में नहीं बिकती हो वह बाज़ार में बिकने वाली एक वस्तु बन जाती है और बाज़ार अर्थव्यवस्था का एक भाग बन जाती है। क्या आप ऐसी चीजों के बारे में सोच सकते हैं जो हाल ही में बाज़ारों में शामिल हुई हों? याद रहे कि यह जरूरी नहीं कि कोई वस्तु ही एक पण्य हो, कोई सेवा भी पण्य हो सकती है। ऐसी चीजों के बारे में भी सोचें जो आज पण्य भले न हों पर भविष्य में हो सकती हों। आप कारण भी सोचें की ऐसा क्यों होगा। अंत में, इस बारे में भी सोचें कि पहले जमाने की कुछ चीजें अब बिकनी बंद क्यों हो गई हैं (मतलब जिनका पहले विनिमय में योगदान था पर अब नहीं है) क्यों और कब कोई कमॉडिटी, कमॉडिटी नहीं रह जाती?

पूँजीवादी समाज की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि उपभोग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है और इसके सिर्फ़ आर्थिक कारण नहीं हैं बल्कि इसका एक प्रतीकात्मक अर्थ है। आधुनिक समाजों में उपभोग एक महत्त्वपूर्ण तरीका है जिसके द्वारा सामाजिक भिन्नता का निर्माण होता है और उन्हें प्रदर्शित किया जाता है। उपभोक्ता अपनी सामाजिक, आर्थिक स्थिति या सांस्कृतिक प्राथमिकताओं को कुछ विशेष वस्तुओं को खरीदकर या उनका प्रदर्शन कर प्रदर्शित करता है और कंपनियाँ उन बातों पर गौर करती हैं और वो अपने सामान, प्रस्थिति या संस्कृति के प्रतीकों के आधार पर बनाती एवं बेचती हैं। टेलीविजन पर आने वाले और सड़कों पर लगे इश्तहारों के बारे में, जिन्हें हम रोज देखते हैं और उस

Reprint 2026-27

© NCERT not to be republished

विज्ञापन में छुपे अर्थ के बारे में सोचिए जिसे विज्ञापनदाता ने अपने उत्पाद की बिक्री के लिए विज्ञापन से जोड़ने की कोशिश की है।

समाजशास्त्र के संस्थापकों में से एक मैक्स वेबर ने पहली बार इस बात को लोगों के सामने रखा कि लोग जो सामान खरीदते हैं एवं उपयोग करते हैं वह समाज में उनकी प्रस्थिति से गहनता से जुड़ा होता है। उन्होंने इसको प्रतिष्ठा का प्रतीक माना। उदाहरण के तौर पर, भारत में आज मध्यम वर्गीय परिवारों में उनके पास जो कार का मॉडल होता है या जिस कंपनी के सेलफोन इस्तेमाल करते हैं वो उनकी सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति का अनुमान लगाने के प्रमुख साधन हैं। वेबर ने इस बारे में भी लिखा कि किस तरह से लोगों की जीवनशैली के आधार पर उनके वर्गों और प्रस्थिति समूहों में भिन्नता की जाती है।

क्रियाकलाप 4.3

विज्ञापनों की व्याख्या

अखबारों और किताबों से विज्ञापन इकट्ठा करें। उन में से दो या तीन विज्ञापन चुनें जो आपको रुचिकर लगे हों। इनमें से प्रत्येक विज्ञापन के लिए निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करें :

1. किस उत्पाद का विज्ञापन किया जा रहा है और उस उत्पाद का किस तरह से चित्रण किया गया है?
2. विज्ञापनदाता ने किस तरह से एक सामाजिक प्रस्थिति और जीवनशैली को अपने उत्पाद से जोड़ने की कोशिश की है?

4.3 भूमंडलीकरण: स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों का गठजोड़

1980 के दशक के बाद, भारत ने अपने आर्थिक इतिहास के नए दौर में प्रवेश किया, ये मुख्यतः राज्य स्तरीय विकास से **उदारवाद** जैसी आर्थिक नीति के परिवर्तन की वजह से हुआ। इस बदलाव से **भूमंडलीकरण** के युग की शुरुआत हुई। वह दौर जिसमें दुनिया पहले से ज़्यादा अंतर्संबंधित है सिर्फ़ आर्थिक तौर पर ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक और राजनीतिक तौर पर भी। भूमंडलीकरण के कई रुझान होते हैं, उनमें से खास हैं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं, पूँजी, समाचार और लोगों का संचलन एवं साथ ही प्रौद्योगिकी (कंप्यूटर, दूरसंचार और परिवहन के क्षेत्र में) और अन्य आधारभूत सुविधाओं का विकास, जो इस संचलन को गति प्रदान करते हैं।

भूमंडलीकरण की एक केंद्रीय विशेषता दुनिया के चारों कोनों में बाज़ारों का विस्तार और एकीकरण का बढ़ना है। इस एकीकरण का अर्थ है कि दुनिया के किसी एक कोने में किसी बाज़ार में परिवर्तन होता है तो दूसरे कोनों में उसका अनुकूल-प्रतिकूल असर हो सकता है। जैसे, अगर अमेरीकी बाज़ार में गिरावट आती है तो भारतीय सॉफ्टवेयर के उद्योग में भी गिरावट आएगी (जैसाकि न्यूयार्क में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर 9/11 के हमले के बाद हमें देखने को मिला था) जिससे इस क्षेत्र में लोगों का व्यवसाय एवं नौकरियाँ जाती रहेंगी। सॉफ्टवेयर सेवा उद्योग और व्यापार में बाह्यस्रोतों के प्रयोग का उद्योग (Business Process outsourcing-BPO) (जैसे, कॉलसेंटर) उन प्रमुख उद्योगों में से हैं जिसके द्वारा भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था से लगातार जुड़ता जा रहा है। यहाँ की कंपनियाँ पश्चिम के विकसित देशों के उपभोक्ताओं को सस्ते दाम पर श्रम और सेवाएँ मुहैया कराती हैं। हम कह सकते हैं कि अब भारतीय सॉफ्टवेयर संबंधी सेवाएँ और उसी प्रकार की अन्य और सेवाओं का विश्वभर में एक बाज़ार बन गया है।

भूमंडलीकरण के अंतर्गत सिर्फ़ पूँजी और वस्तुओं का ही नहीं बल्कि लोगों, सांस्कृतिक उत्पादों और छवियों का भी दुनिया भर में परिचालन होता है। यह विनिमय के नए दायरों से प्रवेश करती है और नए

Reprint 2026-27

बाज़ारों का निर्माण करती है। उत्पाद, सेवाएँ और सांस्कृतिक तत्व जो पहले बाज़ार व्यवस्था से बाहर थे अब उसके हिस्से हैं। एक उदाहरण है भारतीय अध्यात्म और ज्ञान व्यवस्थाओं (जैसे, योग और आयुर्वेद) का पश्चिम में बाज़ारीकरण। अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन का बढ़ता बाज़ार भी यह दर्शाता है कि खुद संस्कृति कैसे बाज़ार का एक हिस्सा बन जाती है। इसका एक उदाहरण है पुष्कर, राजस्थान में लगने वाला प्रसिद्ध वार्षिक मेला जिसमें दूर-दराज से, व्यापारी और पशुचारी ऊँटों और अन्य पशुओं को बेचने एवं खरीदने आते हैं। जहाँ स्थानीय लोगों के लिए पुष्कर मेला एक भव्य सामाजिक और आर्थिक उपलक्ष्य होता है वहीं अब ये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी एक बड़े पर्यटन स्थल के नाम से जाना जाता है। यह मेला पर्यटकों के लिए और भी अधिक आकर्षण का कारण है क्योंकि यह कार्तिक पूर्णिमा के ठीक पहले आता है, जब हिंदू तीर्थयात्री पवित्र पुष्कर तालाब में नहाने आते हैं। इस तरह, हिंदू तीर्थयात्रियों, ऊँटों, व्यापारियों और विदेशी पर्यटकों का सम्मेलन हो जाता है जिसमें सिर्फ़ पशुओं और पैसे का विनिमय ही नहीं बल्कि धार्मिक पुण्यों और सांस्कृतिक प्रतीकों की भी अदला-बदली होती है।

not to be republished

बॉक्स 4.4

जब बाज़ार भी बिकता हो : पुष्कर पशु मेला

"कार्तिक का महीना आते ही... ऊँटों के गाड़ीवान अपने रेगिस्तानी जहाज़ों को सजाते हैं और कार्तिक पूर्णिमा के वक्त पहुँचने के लिए समय से पुष्कर की लंबी यात्रा के लिए निकल पड़ते हैं... यहाँ हर साल लगभग 2,00,000 लोग और 50,000 ऊँट और अन्य पशुओं का जमावड़ा लगता है। वो उन्माद देखते ही बनता है जब रंग, शोर और चहल-पहल से लोग घिरे होते हैं, संगीतवादक, रहस्यवादी, पर्यटक, व्यापारी, पशु और भक्त सब एक जगह इकट्ठा होते हैं। एक तरह से कहें तो यह ऊँटों को सँवारने का निर्वाण है – जिसमें मकई के बाल की तरह बाल सँवारे हुए ऊँटों, पायलों की झनकार, कढ़ाई किए वस्त्रों और टम-टम पर सवार लोगों से आपकी अद्‍भुत भेंट हो सकती है।"

"ऊँटों के मेले के साथ ही धार्मिक प्रतिष्ठान भी एक जंगली-जादुई चरम पर होता है – अगरबत्तियों का घना धुँआ, मंत्रों का शोर और मेले की रात में, हज़ारों भक्त नदी में डुबकी लगाकर अपने पाप धोते हैं और पवित्र पानी में टिमटिमाते दिए छोड़ते हैं।"

स्रोतः लोनली प्लानेट, भारत के लिए पर्यटन गाइड के ग्यारहवें संस्करण से

बॉक्स 4.4 के लिए अभ्यास

बॉक्स 4.4 में दिए गए लेखांश को पढ़ें जो कि विदेशी पर्यटकों के लिए एक पर्यटन पुस्तिका से लिया गया है। यह लेखांश पढ़ने से आपको पता चलेगा कि किस तरह से एक बाज़ार, इस मामले में पारंपरिक वार्षिक पशु बाज़ार और पुष्कर मेला अन्य बाज़ार में बिकने वाली वस्तु बन गए और यह अन्य बाज़ार यहाँ पर्यटन बाज़ार हैं। सवालों का उत्तर देने से पहले कक्षा में इस लेखांश के बारे में चर्चा करें :

1. पुष्कर के अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन के दायरे में आ जाने से इस जगह पर कौन सी नयी वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी और लोगों के दायरे का विकास हुआ है?
2. आपके विचार में बड़ी संख्या में भारतीय एवं विदेशी पर्यटकों के आने से मेले का रूप किस तरह से बदल गया है?
3. इस जगह का धार्मिक उन्माद किस तरह से इसकी बाज़ारी कीमत को बढ़ाता है? क्या हम कह सकते हैं कि भारत में अध्यात्म का एक बाज़ार है?
4. क्या आप ऐसे ही और उदाहरण सोच सकते हैं जिसमें धर्म, परंपराएँ, ज्ञान या यहाँ तक की छवियाँ भी (उदाहरण के लिए, पारंपरिक पोशाक में एक राजस्थानी महिला का चित्र) वैश्विक बाज़ार में वस्तु बन गयी हैं?

उदारवादिता पर बहस : बाज़ार बनाम राज्य

भारतीय अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण प्राथमिक तौर पर उदारीकरण की नीति की वजह से हुआ है जो कि 1980 के दशक में शुरू हुई। उदारवादिता में कई तरह की नीतियाँ शामिल हैं जैसे, सरकारी विभागों का निजीकरण (सरकारी संस्थानों को प्राइवेट कंपनियों को बेच देना); पूँजी, श्रम और व्यापार में सरकारी दखल कम कर देना; विदेशी वस्तुओं के आसान आयात के लिए आयात शुल्क में कमी करना; और

Reprint 2026-27

विदेशी कंपनियों को भारत में उद्योग स्थापित करने में सहूलियत देना। बाज़ारीकरण या इन परिवर्तनों को सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए बाज़ार या बाज़ार-आधारित प्रक्रियाओं (सरकारी नियमों और नीतियों के बजाय) के उपयोग से भी समझ सकते हैं। इसमें आर्थिक नियंत्रण को सरकार द्वारा कम या खत्म कर देना, उद्योगों का निजीकरण और मजदूरी और मूल्यों पर से सरकारी नियंत्रण को खत्म कर देना शामिल है। जो लोग बाज़ारीकरण का समर्थन करते हैं उनका मानना है कि इससे समाज में आर्थिक संवृद्धि और समृद्धि आएगी क्योंकि सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा ये निजी संस्थाएँ ज्यादा कुशल होती हैं।

उदारवाद के कार्यक्रमों के तहत जो परिवर्तन हुए उन्होंने आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाया और इसके साथ ही भारतीय बाज़ारों को विदेशी कंपनियों के लिए खोला। उदाहरण के लिए, अब बहुत सारी विदेशी वस्तुएँ यहाँ बिकती हैं, जो पहले यहाँ नहीं मिलती थीं। माना जाता है कि विदेशी पूँजी के निवेश से आर्थिक विकास होता है और रोज़गार बढ़ते हैं। सरकारी कंपनियों के निजीकरण से कुशलता बढ़ती है और सरकार पर दबाव कम होता है। हालाँकि, उदारीकरण का असर मिश्रित रहा है। कई लोगों का यह भी मत है कि उदारीकरण का भारतीय परिवेश पर प्रतिकूल असर ही हुआ है और आगे के दिनों में भी ऐसा ही होगा, हम अपनी ज़्यादा चीज़ें खोकर कम चीज़ों को पाएँगे। भारतीय उद्योग के कुछ क्षेत्रों (जैसे, सॉफ्टवेयर या सूचना तकनीकी या खेती (में जैसे मछली या फल उत्पादन) को शायद वैश्विक बाज़ार से फ़ायदा हो सकता है पर अन्य क्षेत्रों (जैसे, ऑटोमोबाइल्स, इलेक्ट्रॉनिक्स और तेलीय अनाजों के उद्योग) पर गहरा असर पड़ेगा क्योंकि यह उद्योग विदेशी उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाएँगे।

उदाहरण के तौर पर, भारतीय किसान अब अन्य देशों के किसानों के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं क्योंकि कृषि संबंधित उत्पादों का आयात अब संभव है। पहले भारतीय कृषि सहायता मूल्य और सब्सिडी द्वारा विश्व बाज़ार से सुरक्षित थी। यह समर्थन मूल्य किसानों की न्यूनतम आमदनी को सुनिश्चित करता है क्योंकि यह वह मूल्य थे जिस पर सरकार कृषक उत्पादों को खरीदने को तैयार रहती है। सब्सिडी से किसानों द्वारा इस्तेमाल में लाने वाली चीजें जैसे, खाद उर्वरक, डीजल-तेल का भी सरकार दाम घटा देती थी। उदारवाद बाज़ार में इस तरह की सरकारी मदद के खिलाफ़ है अतः सब्सिडी और समर्थन मूल्य को घटा दिया या हटा लिया गया। इसका मतलब ये हुआ कि बहुतेरे किसान अपनी रोजी-रोटी कमाने में भी असफल रहे हैं। इसी प्रकार छोटे उत्पादकों को विश्व स्तर के उत्पादकों के सामानों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है और ये अपवाद नहीं है कि उनमें से कुछ का बिल्कुल सफ़ाया हो जाए। निजीकरण में उन सरकारी विभागों के मुलाजिमों की नौकरी भी कम हो गई है या कह सकते हैं वो रोज़गार के स्रोत अब स्थिर नहीं हैं। गैर सरकारी असंगठित रोज़गार उभर कर सामने आ रहे हैं और सरकारी संगठित विभागों में नौकरियाँ कम होती जा रही हैं। ये कामगारों के लिए ठीक नहीं है क्योंकि अब उन्हें कम तनख्वाह और अस्थायी नौकरियाँ ही हाथ लगेंगी (कक्षा 12 की दूसरी पाठ्यपुस्तक *भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास* में कृषक परिवर्तन एवं उद्योग पर लिखे अध्याय को देखें)।

इस अध्याय में हमने देखा कि भारत में आज एक ग्रामीण हाट से लेकर अप्रत्यक्ष स्टॉक एक्सचेंज जैसे विभिन्न प्रकार के बाज़ार भी हैं। ये बाज़ार खुद भी सामाजिक संस्था हैं और ये बाकी सामाजिक संस्थाओं जैसे, परिवार, जाति, वर्ग से विभिन्न तरीकों से जुड़े हुए हैं। इसके साथ ही हमने ये जाना

Reprint 2026-27

कि विनिमय के सिर्फ़ आर्थिक मायने ही नहीं होते उसके सांकेतिक और सांस्कृतिक पहलू भी होते हैं। खासकर के उदारवादिता के दिनों में जब सामानों और सेवाओं का तेज़ी से संचलन हो रहा है। भारत के उदारीकरण के बाद के बाज़ारी परिवेश में जो भूमंडलीकरण का अभिन्न हिस्सा भी है। ऐसे तमाम तरीके और प्रणालियाँ हैं जो चीज़ों, सेवाओं, सांस्कृतिक प्रतीकों, पूँजी को बाज़ारी माहौल में प्रवेश दिलाती हैं, आंचलिक ग्रामीण बाज़ार से लेकर विश्वव्यापी व्यापारी क्षेत्रों तक जैसे, नासदक। आज के तेज़ी से बदलते युग में यह समझना आवश्यक है कि किस तरह से बाज़ार निरंतर बदल रहे हैं और इन सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के परिणाम क्या हैं।

प्रश्नावली

1. 'अदृश्य हाथ' का क्या तात्पर्य है?
2. बाज़ार पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, आर्थिक दृष्टिकोण से किस तरह अलग है?
3. किस तरह से एक बाज़ार जैसे कि एक साप्ताहिक ग्रामीण बाज़ार, एक सामाजिक संस्था है?
4. व्यापार की सफलता में जाति एवं नातेदारी संपर्क कैसे योगदान कर सकते हैं?
5. उपनिवेशवाद के आने के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था किन अर्थों में बदली?
6. उदाहरणों की सहायता से 'पण्यीकरण' के अर्थ की विवेचना कीजिए?
7. 'प्रतिष्ठा का प्रतीक' क्या है?
8. 'भूमंडलीकरण' के तहत कौन-कौन सी प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं?
9. 'उदारीकरण' से क्या तात्पर्य है?
10. आपकी राय में, क्या उदारीकरण के दूरगामी लाभ उसकी लागत की तुलना से अधिक हो जाएँगे? कारण सहित उत्तर दीजिए।

संदर्भ ग्रंथ

बेली, सी. ए. 1983. *रूलर्स, टाउंसमैन एंड बाज़ार्स; नॉर्थ इंडियन सोसायटी इन द एज ऑफ़ ब्रिटिश एक्सपेंशन, 1770–1870.* ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. दिल्ली।

दुर्खाइम, ईमाइल. 1964 (1933). *द डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसायटी.* फ्री प्रेस. न्यूयार्क।

गेल, अलफ्रेड. 1982. 'द मार्केट व्हीलः सिंबोलिक आस्पेक्ट्स ऑफ़ एन इंडियन ट्राइबल मार्केट'. *मैन.* (एन. एस.) 17(3):470-91।

हार्डग्रोव, एनी. 2004. *कम्युनिटी एंड पब्लिक कल्चर: द मारवाड़ीस इन केलकटा.* ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. नयी दिल्ली।

मेलिनोवस्की, ब्रान्सला. 1961 (1921). *अर्बोनॉट्स ऑफ़ द वेस्टर्न पेसिफिक.* ई. पी. डट्टन एंड कंपनी. न्यूयार्क।

मॉस, मार्शल. 1967. *द गिफ्ट; फॉर्मस एंड फंक्शंस ऑफ़ एक्सचेंज इन आरकिक सोसायटीज़.* डब्लयू. डब्लयू. नॉटर्न एंड कंपनी. न्यूयार्क।

© NCERT not to be republished

पॉलनी, कार्ल. 1994. द *ग्रेट ट्रांस्फॉरमेशन.* बेकन प्रेस. बोस्टन।

रुडनर, डेविड. 1994. *कास्ट एंड केपिटेलिज़्म इन कॉलोनियल इंडिया: द नट्टूकोटाई चेट्टीयार्स.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ केलिफोर्निया प्रेस. बर्कले।

स्टीन, बर्टन एंड संजय, सुब्रह्यमनयम. संपा. 1996. इंस्टीट्यूशंस एंड इकॉनामिक चेंज इन साउथ एशिया. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. नयी दिल्ली।

© NCERT not to be republished